ग्यारहवीं
एक
बिदात
http://salfibooks.blogspot.com

ग्यारहवीं शरीफ की तहकीक

अज़-मो. इस्माईल मुहम्मदी सामरूदी इमाम-व-ख़तीब जामा मस्जिद अहले हदीस सामरूद सूरत

इस्लाम के बारह महीने में से चौथे महीने का नाम रबीउस्सानी है। इस महीने में कोई खास इबादत कुर्आन व हदीस से साबित नहीं कि उसको बयान किया जाए अलबत्ता अव्वामुनास उसको ग्यारहवीं शरीफ का महीना कहते हैं और हजरत शैख अब्दुल कादिर जिलानी के नाम पर नज्रो नियाज़ करते है। उनकी ग्यारहवीं मनाते है, और उनका ये एतकाद है कि रबी-उस्सानी की ग्यारहवीं तारीख को हज़रत पीर का इन्तकाल हुआ था। इसलिए उनकी याद ताजा करने के लिए ग्यारहवीं करने से मुहब्बत का इज़हार होता है और साल भर तक माल और कारोबार में बरकत रहती है। ग्यारहवीं के मुल्लाओं ने अपने मुरीदों में यह मशहूर कर रखा है कि ग्यारहवीं की एक हड्डी एक कौआ उडाए लिए जा रहा था इत्तिफाकन उसके पंजों से निकल कर कहीं कब्रिस्तान में जा पड़ी। इस हड्डी के तुफैल सारे कब्रिस्तान वाले मुर्दे बख्श दिये गए। ग्यारहवीं करने वाला और या गौस के नारे लगाने वाला जब मरता है। तो कब्र में पीर साहब उसको अजाब नहीं होने देते वगैरह-वगैरह...इन खुराफात और मनगढ़ंत फजाईल से ये रस्म इस कदर रिवाज पा चुकी है कि फराईज इस्लाम और सुन्नी खैरूल अनाम की पाबंदी न हो। मगर ग्यारहवीं ख्वाह कर्ज लेकर ही हो जरूर की जाती है। नमाज़ रोजा का तरक इतना गुनाह नहीं समझा जाता जिस कदर ग्यारहवीं न करने वाला मौजिब मलामत करता है। फिर सामत यह है कि कोई मुवाहिद अहले सुन्नत इनकी इस्लाह करनी चाहता है तो अपना बदख्वाह समझते हैं। काश। मुसलमान अपनी बदगुमानियों को दूर करके हमारे अकीदे को अपने दिल से लगा लें।

हमारा अकीदा : बखुदा हम हजरत शैख अब्दुल

करते हैं, उनकी मुहब्बत को जुज व ईमान कहते हैं कुआन व हदीस से साबितशुदा कामों ही में उनकी ताबेदारी करते हे। उन्हें अपना बुजुर्ग जानना और उनकी इज्जत करना अपना इस्लामी शैवा समझते हैं और उनकी मुहब्बत व इज्जत यही है कि कुर्आन व हदीस तौहीद व सुन्नत की रोशनी में उनकी इत्तेबा की जाएं न कि जिन अकाईद व आमाल से उन बुजुर्गों ने मना किया है उनको हम अपना दीन व ईमान समझे और जिन अहकाम शरीअत की उन्होंने तालीम दी है उनको भुला दूर भागें। झूठी हिकायते, बेसनद करामात उनके जिम्मे लगाकर मुशरिकाना मुनाजात और कुफरिया कसीदें बनाकर उनकी मुहब्बत का दावा करें और असल यह न उनकी मुहब्बत है न इज्जत।

यानी इस मुहब्बत का दावा करने वाले अगर तू अपने दावें में सच्चा है तो जिसका आशिक होने का दावेदार है उसकी इताअत व फरमाबरदारी करके दिखा। अगर तू ताबेदार नहीं बन सकता तो दुनिया को धोखा क्यूं देता है किसी बुजुर्ग या वली की विलादत या वफात की तारीख त्यौहार मुकर्रर कर लेना और हर साल और हर माह उसकी यादगार करना यह तालीम इस्लाम के मनाफी है। इसकी बुनियाद ईसाईयों और दिगर गैर मुस्लिम अकवाम ले रखी है। अगर इस्लाम में इसकी इजाजत होती तो रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से पहले हजारों अल्लाह के पैगम्बर कलीमुल्लाह, खलीलुल्लाह जैसे पैदा भी होते थे और दुनिया से रूखसत भी हो चुके थे रसूल अल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम इन सबका हर साल यौमें

किया न सहाबा किराम रज़ियल्लाहु तआला अन्हु को उसका हुक्म दिया। हालाँकि रसूल को और तमाम सहाबा को अल्लाह के पैगम्बरों से मुहब्बत थी। मालूम हुआ कि इस्लाम में इन हुरमात व बिदआत की कोई गुन्जाईश नहीं है। **कौमों के उरूज व तरक्की के जराए इन बुजुर्गों की पैदाईश और वफात की यादगारें मुकर्रर कर लेने में नहीं है। बल्कि उनकी अमली जिन्दगी इख्तियार करने और उनके किरदार को उसवा-ए-हस्ना ठहरा लेने में कौम की तरक्की का राज है। यह बेअमल यादगारें महज नुमाईश है।**

आईये ग्यारहवीं को कारे सवाब व तरीक-ए-मुहब्बत जानने वाले पहले खुद शाह अब्दुल कादिर जीलानी का फैसला सुन लें, आप अपनी किताब गुनियततुत्तालिबीन में यौम-ए-करबला का जिक्र करते हुए फरमाते हैं अगर हज़रत इमाम हुसैन के यौम-ए-शहादत को ग़म व मातम का दिन बना लेना दुरूस्त और ठीक होता तो चाहिए था कि पीर (सोमवार) का दिन बहुत बड़े मातम और मुसीबत का और आह-व-जारी (रोने-धोने) का मुक़र्रर किया जाता, क्योंकि उसी दिन वफाते रसूल है, और उसी दिन वफाते सिद्दीक़ भी है, मगर जाइज न यह न वह और अगर यह दूसरी चीज़ ही जाइज़ होती तो सहाबा व ताबिईन ऐसे न थे कि इस से गाफिल रहते सबसे ज्यादा आप सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के करीब और आप के साथ खुसूसयित रखने वाले यही हज़रात थे। पीर साहब ने अपने इसी फ़रमान में किसी की वफ़ात के दिन को यादगार मनाना और हर साल इस का मातम करना नाजाइज क़रार दिया है, उन को क्या ख़बर थी कि उनके मानने वाले मेरा दिन भी मनाया करेंगे, याद रहे कि उनकी यही दलील ग्यारहवीं की हुरमत में पेश की जाएगी।

11वीं तारीख इसलिए की जाती है कि यह शाह अब्दुल क़ादिर जीलानी क[illegible] का दिन है, हालाँकि यकीन के साथ यह नहीं कहा जा[illegible]ता। देखिए किताब मुख़्तसर

यह है कि पीर साहब की वफ़ात के महीने और तारीख में बड़ा इख़्तिलाफ है, कोई मुवर्रिख सफर का महीना लिखता है, कोई रबीउस्सानी का, कोई 17वीं तारीख बतलाता है, कोई 8, कोई 9, कोई 10, कोई सफर की 14, और कोई 12, फिर लुत्फ पर लुत्फ यह है कि हिन्द-व-पाक में ग्यारहवीं रबी-उल-अव्वल के साथ साथ रबी-उस्सानी में मनाई जाती है, और खुद बगदाद में सत्तरहवीं रबी-उस्सानी, दरअसल यह भी कोई चीज़ नहीं (मुख़्तसर हालाते शैख़ मुहम्मदी मतबूअ: कराची)

इस्लाम का यह बुनियादी मसअला है कि इबादत ख़्वाह बदनी हो या माली सिर्फ अल्लाह वहदहु ला शरीका लहु के लिए है हनफी मज़हब की किताबों में भी अल्लाह के सिवा औरों के लिए नज़्र-व-नियाज़ हराम लिखी है, चुनांचे हनफी मज़हब की मुअतबर किताब रद्दुल मुख़्तार जिल्द सानी मतबूआ मिस्र में लिखा है कि अकसर आम लोग जो मुर्दों की नज़्र-व-नियाज़ करते हैं, चाहे नकदी हो या किन्दील (चराग़) हो तेल हो या और कोई चीज़ हो यह नज़्रो-नियाज़ हनफी उलमा के नज़दीक इजमाई तौर पर बातिल और हराम है, और इस सूरत से अवलिया-ए-किराम का तक़र्रूब हासिल करना बातिल है, इसी सफह में आगे अल्लाम: इब्ने आबिदीन में इसके हराम होने की कई वजहें लिखी है।

1. इसके हराम होने की एक वजह तो यह है कि यह नज़्रो-नियाज़ मख़्लूक के लिए है, और मख़्लूक के लिए नज़्रो-नियाज जाइज नहीं है, क्योंकि इबादत है, और इबादत के लाइक कोई भी मख्लूक नहीं।

2. दूसरी वजह यह है कि जिसके लिए यह नज़्र की गई है वह मय्यित (मुर्दा) है और मुर्दा किसी चीज़ की मिलकियत या अख़्तियार नहीं रखता।

3. तीसरी वजह यह है कि नज़्रो-नियाज़ करने वाला यह समझता है कि मय्यित भी कुछ नफअ-व-नुकसान पहुंचा सकती है और ऐसा अकीदा सरीह कुफ्र है।

आगे लिखते है [illegible]ल्लाह के अलावा औरों की नज़्र-व-नियाज़ के हराम होने में उम्मत का इजमा और इत्तिफाक

है कि ना यह नज़्र माननी जाइज है और ना ही उसका पूरा करना जरूरी है बल्कि हरामे-कतई है और आगे लिखा है कि कुछ लोग जो नज़्र-व-नियाज़ का तेल किसी कब्र पर चढ़ाते हैं या शैख़ अ. कादिर जीलानी के नाम का कुतब रूख़ जलाते हैं यह नज़्रो-नियाज़ भी बातिल व हराम है।

हनफी मज़हब के माया नाज़ आलिम मौलाना अ. हई लखनवी मजमूअ फतावा जि. अव्वल में लिखते हैं कि अल्लाह के सिवा औरों की खातिर नियाज़ करना हराम है और जो चीज़ अल्लाह को छोड़कर दूसरे के नाम पर नज़्र की जाएं वह भी हराम है।

आईये मैं आपको कुर्आनि करीम का कतई फैसला भी सुना दूं फिर आपको अख़्तियार है कि खुदाई फैसले को अख़्तियार करें या ना करें निजात इसी में है कि हम कुर्आनि करीम के कतई फैसला को बिला हुज्जत और बग़ैर किसी कीला-क़ाल के तसलीम कर लें। इर्शाद-ए-बारी तआला है व-मा उहिल-ल-बिहि लि-ग़ैरिल्लाहि (सूरः बकर) यानी जो चीज़ अल्लाह के सिवा और किसी नाम पर पुकारी जाए वह क़तअन हराम है इहलाल : के मअना आवाज बुलन्द करने और मशहूर करने के हैं,

यह बात साफ मशहूर है और खुल्लम-खुल्ला बरमला पुकारा जाता है कि यह पुलाव बड़े पीर साहेब की ग्यारहवीं का है, यह कोरमा पीराने पीर की नियाज़ का है, फिर इसकी हुरमत में क्या आपको कोई शक-व-शुब्ह रह गया।

पीर साहेब अपनी किताब फुतूहुल गैब के मकाला दोम में लिखते हैं कि सुन्नतों की पैरवी करते रहो, बिदअतें ना निकालो खुदा और रसूल का कहा मानो और नाफरमानी न करो, मुवह्हिद बन जाओ। मुश्रिक ना बनो, आप फरमाते हैं कि जब तू अल्लाह के सिवा दूसरे की तरफ झुका और दूसरे की इबादत-व-बन्दगी की तो मुश्रिक हो गया।

पीर साहब के यह कीमती इरशादात क्या हम को तौहीद का सबक देने के लिए काफी नहीं है?

अगर दर हकीक़त आप बड़े पीर के मुहिब (मुहब्बत करने वाले) हैं तो आप उनके नाफरमानों की कद्र करते हुए तौहीद को मजबूत पकड़ लेना चाहिए, और शिर्क-व-बिदअत को मिटाना चाहिए।

अल्लाह हम सब [illegible]मान मर्दों व औरतों को हर किस्म के शिर्क-व-बिदअ[illegible] कर पक्का सच्चा मुवह्हिद और सुन्नत का मुत्तबेअ और पैयकार बनाये। आमीन।

ग्यारहवीं शरीफ की फातिहा

ए.ए. फारूक़ी, शक्ति नगर, लखनऊ उ.प्र.

दसअसल ग्यारवहीं की फातिहा का ताल्लुक एक ऐसी बुजुर्ग हस्ती से है जिनकी पैदाइश 470हिजरी में ईराक के शहर बग़दाद में हुई। इन बुजुर्ग का मुबारक नाम हज़रत शेख़ अब्दुल कादिर जीलानी रह. है। आपका मज़हब सिर्फ कुर्आन और हदीस था यानी आप रह. अहले सुन्नत थे। आपको लोग बड़े पीर, गौस पाक और पीराने पीर दस्तगीर के लक़ब से भी पुकारते हैं। आप की मशहूर किताब का नाम फतहुल ग़ैब है। इसी किताब में तक़लीद के मुताल्लिक आपने जबरदस्त नसीहत व हिदायत फ़रमाई है- हमें कुर्आनों हदीस को अपना इमाम बना लेना चाहिये क्योंकि दुनिया के हर मसले का हल कुर्आनों हदीस में मौजूद है, बस जरूरत है तक्लीदी चश्में को उतार फैंकने की, वरना हमें कुछ भी उसमें नज़र नहीं आयेगा और हम इसी तरह इमामों के मुहताज बने रहेंगे और यह हकीकत समझ लो कि कुर्आन के अलावा हमारे पास अमल के काबिल कोई किताब नहीं और मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के सिवा हमारा कोई रहबर नहीं जिसकी हम ताबेदारी करें। आप 91 साल की उम्र में 561 हिजरी में अल्लाह को प्यारे हुए।

पीर जीलानी रह. के बारे में हिन्दुस्तान के मुसलमानों की एक खुसुसी जमाअत का कुफ्रिया अक़ीदा है कि जिनको अल्लाह डुबोने का इरादा कर के डुबो दे-पीर जीलानी रह. उन्हें पार लगा देते हैं, बचा लेते हैं। फिर यह भी कहते हैं-लाइलाहइल्ललाह, यानी नहीं है कोई माबूद सिवा अल्लाह के। हालाँकि उनके अकीदे के मुताबिक पीर जीलानी रह. (नऊजोबिल्लाह) अल्लाह से भी बड़े माबूद हैं। अल्लाह से बढ़कर कुदरत रखते हैं कि अल्लाह डुबोता है और ये तैराते हैं। अल्लाह की पनाह। अब जहाँ तक ग्यारहवीं की फातिहा का ताल्लुक है तो इसके बारे में एम मनगढंत कहानी भी पीर जीलानी रह. के मुताल्लिक मशहूर कर रखी है कि उन्होंने बारह बरस का डूबा हुआ बेड़ा दरिया से निकाला था। कहानी कुछ इस तरह है कि एक औरत का एक बेटा था। उसकी शादी की बारात गयी। जब बारात दरिया पार कर रही थी तो बाढ आ गयी और वो बारात डूब गयी। साथ ही दुल्हा भी डूब गया। वो औरत बारह बरस तक रोती रही। आखिर हज़रत पीर जीलानी रह. के पास गई। उन्होंने उस बूढ़ी हो चली औरत के हाल पर तरस खाकर कहा, माई। न रो। जाकर हमारी ग्यारवहीं पका। तेरा बेटा ज़िन्दा हो जायेगा।

उस औरत ने हज़रत पीर रह. की ग्यारहवीं पकायी तो बारह बरस का डूबा हुआ बेटा दरिया से निकल आया और उसका बेटा भी ज़िन्दा दरिया से निकाल आया। (क्या यह किस्सा हमारे हिन्दू भाईयों के देवी-देवता के छम-छम करते चमत्कारों की याद नहीं दिलातें?)

इस मनगढंत वाकिये को [illegible]ील बनाकर जेब व पेट भरू मौलवी कहने लगे कि जो लोग अपनी जान [illegible] औलाद की ख़ैरियत चाहते हैं उन्हें चाहिये कि हर माह की ग्यारह तारीख [illegible] पीर साहब रह. की ग्यारहवीं पका

हो कर बिला शुब्हा जिस तेज़ रफ़्तारी से अवाम ने इस्लाम कुबूल किया इसमें औलिया अल्लाह के करामात का भी बड़ा दखल था जो अल्लाह तआला ने मोकामी साधू सन्तों और जोग के ग़ैर मुस्लिम माहरीन को लाजवाब करने के लिये तौहीद के अलमबरदार औलिया अल्लाह को अता फरमाई थी। वे जलीलुल कद्र औलिया कराम अपनी ज़िन्दगी के आख़िरी मरहले तक तौहीद इलाकी, शरीयत और सुन्नत रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की इत्तेबाह की वसीयत ही करते करते इस दारेफ़ानी से कूच कर गये। इन्ना लिल्लाहे व इन्ना इलैहि राजिऊन।

लेकिन अफसोस। रोटी की ख़ातिर हज़रत पीर रह. के ताल्लुक से एक से एक झूठी कहानियाँ गढ़ी गई और इसे उनकी करामात बता कर ग्यारहवीं की बिदअत को हिन्दुस्तानी मुसलमानों में रवाज दे दिया गया। हालाँकि ख़ास बग़दाद में कोई ग्यारहवीं का नाम तक नहीं जानता और न दुनियाँ में कहीं दी जाती है। हमारे यहाँ तो यह हाल है कि मुसलमान डर से ग्यारहवीं की फातिहा दिलाते हैं कहीं पीर साहब रह. नाराज न हो जाये और फिर कोई आफत न आ जाये। इतना ही नहीं, इन पेट भरू मौलवियों ने साल के बारह महीनों में एक महीने का नाम ही ग्यारहवीं का महीना रख दिया है और इसे बड़े अदब से ग्यारहवीं शरीफ कहते हैं। इस महीने की ग्यारह तारीख़ को बहुत से जाहिल किस्म के मुसलमान खूब धूम-धाम से एक त्यौहार की शक्ल में इस दिन को मनाते हें। डेगें चढ़वाते हैं, गोश्त पुलाव पकवाते हैं। इस खाने पर बड़े पीर का फातिहा दिलवाते हैं और लोगों की दावतें भी करते हैं। इस दिन उनके घर बिल्कुल शादी जैसा माहौल होता है।

वाजेह रहे कि अल्लाह के नाम पर देना ईसाले सवाब की नीयत से दुरूस्त है और इसमें कोई हर्ज़ नहीं है। लेकिन नज़र ग़ैरूल्लाह की सूरत में इस ख़्याल से देना कि अगर न दिया तो बुजुर्ग नाराज हो जायेंगे और कोई तबाही आ जायेगी और नियाज़ देने से बुजुर्ग की खुशनूदी हासिल होगी, सरासर ईमान बर्बाद करना है। यह तो अल्लाह की कुदरत और इख़्तियार गैरूल्लाह में मान कर उसके सिवा माबूद बनाना है जो कि बहुत बड़ा गुनाह है और यही असल शिर्क है। मुस्लिम मुआशरे में इसी तरह की दूसरी बिदआत मसलन रजब के कूंडे और मुहर्रम में ताज़ियादारी जो बदकिस्मती से आज भी बदस्तूर जारी है, उसे भी लोग समझते बूझते हुए भी महज़ डर की वजह से छोड़ नहीं पा रहे हैं। ऐसे ना समझ मुसलमान भाइयों के ह[illegible]में अल्लाह तआला से दुआए ख़ैर करने के अलावा कोई कर भी क्या सकत[illegible]

बहर हाल, अल्लाह तबारक व तआला से दुआ है कि हमें सही